कबीर के राम

डॉ० रवीन्द्रनाथ मिश्र

हमारे संतो, भक्तों, कवियों, मनीषियों, चिंतको आदि ने अपने भावों और विचारों के अनुसार अपने-अपने राम का गुणगान विभिन्न रूपों में किया है। यहां मैंने कबीर के राम का विशुद्ध दार्शनिक रूप प्रस्तुत न करके उसे जीवन और समाज से जोड़कर देखा है। कबीर के राम तो जनजीवन की चेतना में बसे राम हैं। समाज से काटकर उनके राम को देखना नाइंसाफी होगी। कबीर ने स्वयं ही कहा है "जिहिं हरि जैसा जानिहौ तिनको तैसा लाभ' जिसने हरि को जैसा जाना है उसको वैसा लाभ हुआ है। बाबा तुलसी ने भी कुछ इसी तरह से कहा कि "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी"। यह तो अपनी दृष्टि पर निर्भर है कि हम राम को किस रूप में देखते हैं। इस मायने में कबीर साहब का नजरिया कुछ अलग था। यह सही है कि राम का मंत्र कबीर को रामानंद से मिला था लेकिन उन्होंने उसे अपने अनुभव के आधार पर नए ढंग से गढ़ा। उन्हें परंपरा से, समाज से, उस समय के धर्म चेतना के वाहक बौद्धों, जैनियों, योगियों, वैष्णवों, सूफियों, पंडितों, सिद्धों, नाथों, मुल्ला-मौलवियों, काजी-फकीरों आदि से जो कुछ मिला उसको उन्होंने जीवनानुभव की मुट्ठी में जलाकर अपने राम का एक अलग अनूठा रूप तैयार किया जोकि अन्यों से भिन्न था। इसके माध्यम से उन्होंने मात्र भक्तिभावना का उदाहरण ही नहीं प्रस्तुत किया अपितु सम्पूर्ण व्यक्ति और समाज के मन को धो डाला। इस प्रकार उनकी आध्यात्मिक कही जाने वाली बहुत सारी रचनाओं में समाज की गम्भीर पीड़ा को वाणी मिली।

कबीर के राम तो एक हैं। अनेकता तो उनका खेल तमाशा है। जिसे वे बार-बार दिखाते हैं और उसे देखकर हम बार-बार आश्चर्य चकित होते रहते हैं। उनका राम तो उस सागर और सूर्य की भांति है जिनमें अनेक लहरें और किरणें बनती-मिटती हैं। इसी प्रकार से एक ब्रह्म से अनगिनत जीव जन्म लेते और मरते रहते हैं। इसीलिए तो कबीर साहब ने इस संसार को कागज की पुड़िया कहा है जोकि बूंद पड़ने से गल जाता है लेकिन ईश्वर सदा कायम रहता है। जिसे हम देख नहीं सकते। उसका कोई रूप-रंग, आकार-प्रकार नहीं है। उसे तो पुष्प की सुगन्ध की भांति अनुभव किया जा सकता है। वे तो तिल में तेल और चकमक में आग की तरह हर इंसान के अदंर विद्यमान हैं। यदि आप में हिम्मत है तो ढूढ़ निकालिए। यह आसान काम नहीं है। इसके लिए तो आपको मन की सारी कालिख साफ कर प्रकृति जैसी वास्तविकता, स्वच्छता, सरलता और निष्कपटता लानी होगी।

जाके मुंह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास ते पातरा, ऐसा तत्व अनूप।।

ज्यों तिल माहीं तेल हैं, औ चकमक में आग।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जागि।।

कबीर के राम मंदिर-मस्जिद-गिरजाघर, गुरूद्वारा एवं अन्य धार्मिक स्थलों पर निवास करके लोगों के दिलों में रहते हैं। फिर भी मनुष्य उसे प्राप्त करने के लिए इधर-उधर भटकता है और नाना प्रकार की क्रियाएं करता है। यहां कबीर की आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन-दृष्टि का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है-

मोकों कहां ढूंढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौने क्रिया-कर्म में, नहीं योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वासों की स्वांस में।।

यह अजीब विडंबना है कि ईश्वर हर स्वांस में निवास करता है फिर भी हमें नहीं मिलता। कबीर ने बड़े साफ शब्दों में इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि इसके लिए हमें शरीर रूपी मंदिर में स्थापित ईश्वर रूपी आत्मा में परमात्मा का निवास कभी नहीं हो सकता। इसके लिए संत स्वभाव ग्रहण करना होगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार जैसे विकार से ग्रस्त आत्मा में परमात्मा का निवास कभी नहीं हो सकता। इसके लिए संत स्वभाव ग्रहण करना होगा।

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देहि उड़ाय।।
सिंहों के लेहडे नहीं, हंसों की नहिं पांति।
लालों की नहिं बोरियां, साधु न चले जमात।।

कबीर अपने राम की उपासना के साथ-साथ व्यक्गित और सामाजिक विकारोंको दूर करना चाहते थे। व्यक्ति और समाज की सारी बुराईयां ईश्वर को एक मानने से ही दूर हो सकती हैं। कबीर कुलाभिमान और वर्ण-व्यवस्था की घोर निन्दा इसलिए करते हैं कि वे भिन्न-भिन्न वर्णों के समझे जाने वाले लोगों को जन्म से ही अभिन्न अर्थात एक समान समझते हैं। इसका वास्तविक कारण बताते हुए वे कहते हैं-

अल्ला एकै नूर उपजाया, ताकी कैसी निन्दा।
ता नूर थैं सब जग कीया, कौन भला कौन मन्दा।।

अर्थात्, जब परमेश्वर ने एक ही ज्योति से सारे संसार का निर्माण किया तो उसमें किसी को भला और किसी को बुरा कहने के लिए स्थान कहां रह जाता है। यहां आकर सारी विषमता दूर हो जाती है। कबीर अपने राम के माध्यम से सबका भला करना चाहते थे। उनका मानना है कि "बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय। जो दिल खोजूं आपना, मुझसे बुरा न कोय।। वे किसी एक जाति, भाषा और सम्प्रदाय के शुभचिंतक नहीं थे। अपितु समग्र मानवजाति के थे। 'कहै कबीर एक राम जपहु रे, हिन्दू तुरुक न कोई', "कहै कबीर कछु आन न कीजै, राम नाम जपि लाहा लीजै", "कहै कबीर सुनो रे भाई, राम नाम बिन किन सिधि पाई। यानी कबीर के

राम अद्‌भुत और अनोखे हैं। क्योंकि वे निर्गुण और सगुण के परे हैं। विभिन्न मतों, धर्मों और सम्प्रदाओं में अगर कहीं उनके राम की निकटता बनती है तो वह नाथ योगियों के निकट प्रतीत होती है।

कबीर यह मानते थे कि परमतत्व को द्वैत और अद्वैत की सीमा रेखा में नहीं रखा जा सकता। 'कबीर-मीमांसा नामक पुस्तक में रामचंद्र तिवारी लिखते हैं कि 'जो राम उनको परंपरा से मिले थे, उसे उन्होंने नया स्वर, नया तेवर, नई भाव भंगिमा, नई प्रखरता और नए आस्था-विश्वास से सजाया लेकिन उसमें निहित अर्थ-संस्कार को सहसा बदलना उनके वश की बात नही थी।" (पृष्ठ- 113) कबीर ने अपने परमतत्व को लोक जीवन में प्रचलित राम, हरि, गोविन्द, निरंजन, केशव, नारायण, जगजीवन, माधव, गोपाल, सहज, शून्य, मुरारि, नरहरि, करीम, रहीम, अल्लाह आदि न जाने कितने नामों से पुकारा। कबीर ने जिस ब्रह्म को 'निर्गुण ब्रह्म' कहा है वह अनादि, अखंड, अछेद, अभेद और अज्ञेय हैं। उसकी गति को लक्षित नहीं किया जा सकता। वेद, पुराण, निगम, आगम आदि उसे कोई नहीं जानते

निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई।
अविगत की गति लखी न जाई।।
चारि वेद जाके सुमृत पुरांना, नौ व्याकरणां मरण न जाना।
अलख निरंजन लखै न कोई, निरभै निराकार है सोई।
बारन अबरन कथ्यौ नहिं जाई, सकल अतीत घट रह्यौ समाई।
आदि अंति ताहि नहीं मधै, कथ्यौ न जाई आहि अकथे।
अपरंपारउपजै नहिं विनसै, जुगति न जानिये कथिये कैसे।।
एक कहौं तो है नहीं, दोय कहूं तो गार।
है जैसा तैसा रहे, कहैं कबीर विचार।।

यहां कबीर के निर्गुण राम की जानकारी कर लेना समीचीन होगा। वासुदेव सिंह ने 'मध्यकालीन साधना' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि "निर्गुण से सन्त कबीर का मन्तव्य ठीक वही नहीं है, जो वेदान्त का है। वेदान्त का निर्गुण उपास्य नहीं हो सकता। वह सम्पर्क में आता ही नहीं। वह सृष्टि का आधार है, किन्तु सृष्टि नहीं करता। उसका विस्तार नहीं होता। 'निर्गुण का तात्पर्य ही है-जिसका गुण न हो, विस्तार न हो। माया उसी की शक्ति है। उसी के माध्यम से वह सृष्टि करता है। तब वह सगुण हो जाता है। कहा भी गया है 'मायोपहितं चैतन्यं च ब्रह्म'। इस प्रकार जब उसने सृष्टि की तो आत्मा के रूप में सभी में व्याप्त हो गया। संत कबीर ने ऐसे ही परमतत्व को अपना उपास्य माना है।" (पृष्ठ-86) इसी राम के आधार पर वे सम्पूर्ण मानवजाति के अंतर्गत एकता और सदभाव स्थापित करना चाहते हैं।

दशरथ कुल अवतरि नहिं आया, नहिं लंका के राव सताया।
नहिं देवकी के गर्भाहिं आयां, नहिं जसोदै गोद खेलाया।।

जायसी की तरह कबीर ने भी 'मानुष प्रेम' को महत्व दिया। वस्तुतः मानुष-सच सम्पूर्ण भक्ति-आंदोलन के केन्द्र में था। कबीर को यह सत्य जीवन और जगत के अनुभवों से

मिला था। जब वे बार-बार 'अनभय सांचा' की बात करते हैं तो निश्चित है कि वे 'अनुभव' के सच को मांजना चाहते हैं और अपना ही 'सत्यार्थ' अपने से प्रकाशित करना चाहते हैं। यही इनका 'अनभै सचै' था जिसे कि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अनुभव का सत्य और अनभय सत्य कहा है। कबीर ने अपनी खुली आंखों से अपने समय और समाज को देखा, परखा, जाना और समझा। उससे जो निचूर कर आया उसे उन्होंने वानी दी। ततकालीन 'आंखिन देखी' विभिन्न धर्मों, सम्प्रदाओं, मतों, पंथों आदि की विचारधाराओं को उन्होंने अपने अनुभव की कसौटी पर कसकर स्वयं के मत का प्रतिपादन किया जोकि निश्चित रूप से वह अन्यों से भिन्न था।

कबीर ने अवतारी राम का खंडन करते हुए निर्गुण ब्रह्म को राम, करीम, रहीम, अल्ला, खुदा, सतगुरू, हंसा, सुअरा, हरि, रमइया, बालम आदि न जाने कितने नामों से पुकारा। स्वंय को रमइया की 'दुलहिन' और राम का 'कूता' बताकर भक्ति के अनन्य भाव को प्रकट किया। इसी के सहारे उन्होंने भरे बाजार में सबकी खैर मनाते हुए न किसी से दोस्ती का हाथ बढ़ाया और न ही दुश्मनी का। समाज के सारे बाह्यचारों, आडम्बरों और कर्मकाण्डों का विरोध करते हुए कबीर अपने घर-गृहस्थी का काम करते हुए भी अपने राम को खुली आंखों से देखा। राम को वे शरीर गलाकर और यातना देकर नहीं प्राप्त करना चाहते थे। इसके लिए कबीर ने भस्म लगाकर कान और आंख मूंदने पर बल नहीं दिया। राम को काम से जोड़ते हुए उसके निमित्त जहां-जहां किसी कार्य हेतु जाया जाए वही ईश्वर की परिक्रमा है। वे एक ऐसे ईश्वर की अनुभूति कर रहे थे, जो पृथकता नहीं अखंडता का भावात्मक स्त्रोत था। इसी जमीन पर वे यह भी कह रहे थे - 'जेती औरत मरदा कहिए, सबमें रूप तुम्हारा।'

कबीर ने जिन्दगी की सारी लड़ाई अपने राम, सत्य और प्रेम के बल पर लड़ी। ये तीनों इनके लिए एक-दूसरे के पर्याय थे। कबीर ने तो सत्य को ईश्वर और ईश्वर को सत्य माना है। 'सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप। जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप।।" प्रेम को जानने का अर्थ है सब कुछ जान लेना। जो व्यक्ति प्रेम को जान जाता है, उसके लिए फिर कुछ जानना शेष नहीं रहता। उसमें तो प्रभु को प्राप्त करने की क्षमता पैदा हो जाती है। यह प्रेम की सर्वोच्च अवस्था है। प्रेम ही वह अनमोल वस्तु है, जो हमारे जीवन को परिपूर्णता और संतोष प्रदान करती है।

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुंवा, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।।"
कबीरा प्रेम न चाखिया चाखी न लिया साव।
सूने घर का पाहुना ज्यू आया त्यूं जाय।।
ऐसी वाणी बोलिये मन का आपा खोय।
अपना तन सीतल करे औरन को सुख होय।।

जिसके हृदय में प्रेम का निवास है, वहां 'मैं' अथवा 'मेरा' ये भाव नहीं रह सकते। 'मैं लागा उस एक से, एक भया सब मांहि' से अपने और पराए का भाव समाप्त हो जाता है। इन्हीं के बल पर कबीर ने सरेआम बीच बाजार में सबको चुनौती दिया। गांधीजी ने भी तो प्रेम और सत्य का सहारा लेकर सूर्य न डूबने वाले साम्राज्य को उखाड़ फेंका। वस्तुतः हम अहंकार की

बात तभी करते हैं, जब हममे प्रेम का अभाव होता है। प्रेम केवल देने और बांटने की वस्तु है। कबीर ने बार-बार कहा है कि जिसके हृदय में प्रेम, ममत्व, परोपकार, सहानुभूति, श्रद्धा आदि मानवीय मूल्यों का निवास नहीं होता वहां ईश्वर का निवास नहीं हो सकता। इन मूल्यों के रहने से अपने-पराए का भाव समाप्त हो जाता है। प्रेम मानव की अनिवार्य संपदा है। यह हमारा स्थायी भाव है। जोकि जन्म से मृत्युपर्यन्त रहता है। कबीर ने अपनी रचनाओं में बार-बार प्रेम का जिक्र किया है।

कबीर ने नैतिक चेतना और सामाजिक विवेक की बहुत सारी बातें अपने प्रभु से जोड़कर कही हैं जोकि आज के बाजारवाद से घुटन-टूटन भरी जिन्दगी के लिए संजीवनी बूटी के समान हैं। दुर्भाग्य है कि आधुनिकता, मीडिया और पूंजी की चकाचौंध में कबीर द्वारा स्थापित मूल्यों की महत्ता धूमिल हो गयी है। वासुदेव सिंह ने अपनी पुस्तक कबीर: साहित्य साधना और पंथ में लिखा है- "कबीर का धर्म सच्चा मानव धर्म है, जो मनुष्य को जोड़ता है, तोड़ता नहीं, जिसमें ऐसी सच्चाई है जो सभी धर्मों के मूल में है, किंतु जो सभी बाह्याडम्बरों और पाखण्डों से रहित है। उन्होंने ऐसे धर्म का प्रचार किया, जिसका आधार विश्वास और व्यक्तिगत अनुभव है।" (पृष्ठ-5)

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है ताके हृदय आप।।
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भया, लिखि-लिखि भया जु ईंट।
कहै कबीरा प्रेम की लागी न एकौ छींट।।
साईं इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं साधु न भूखा जाय।।

कबीर की साधना का मूल मंत्र राम के साथ अभेद स्थापित करना था। इस संबंध में विष्णुकांत शास्त्री ने अपने एक लेख में लिखा है जो कि 'कबीरदास: विविध आयाम' सं० प्रभाकर श्रोत्रिय की पुस्तक में संकलित है "राम से अभिन्न हो जाने के बाद भेद-भाव, छुआ-छूत, ऊंच-नीच, धनी-निर्धन का भेद निस्सार हो जाता है और इस साधना में जो सहायक नहीं होते कबीर उनको खल कहकर उन पर प्रहार करते हैं और कबीर का यह क्रांतिकारी रूप है। राम का आश्रय लेकर छुआ-छूत का प्रचार करना, राम का आश्रय लेकर हिंदू-मुसलमान का भेद भड़काना, राम का आश्रय लेकर ऊँच-नीच को, अमीर-गरीब को स्वीकृति देना यह राम के साथ छल करना है, प्रपंच करना है, इसलिए राम को समग्रता से जान लेने पर, राम के साथ एकाकार हो जाने की साधना ही कबीर की वास्तविक साधना है और इस साधना में जब तक अपने को समर्पित नहीं कर देते तब तक ऐसा हो ही नहीं सकता।" (पृष्ठ 142) कबीर ने स्वयं ही कहा है-

"यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहि।
सीस उतारे भुंई धरे तब पैठे घर मांहि।।

दरअसल समर्पण में भी अहंकार होता है। कबीर के समर्पण में अहंकार के लिए लेश मात्र के लिए भी जगह नहीं है। यहाँ तो "मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सो तेरा, तुझको

सौंपता क्या लागे है मेरा"। राम के साथ जोड़कर कबीर-कबीर हैं अन्यथा वे अपनी कोई सार्थकता नहीं समझते। कबीर अपने राम से कुछ पाना नहीं चाहते। वे तो उनकी दयालुता पर मुग्ध होते हैं। कबीर की आध्यात्मिक चेतना में उनके सामाजिक सरोकार बार-बार टकराते हैं। इन दोनों के माध्यम से कबीर ने शुचिता, समता और एकता का ऐसा भाव प्रस्तुत किया है कि उनके राम बार-बार याद रहेंगे। कबीर के राम हमारे जीवन से जूझते हुए राम हैं। जोकि जीवन की सच्चाईयों से जुड़कर मानवीय मूल्यों को धारदार बनाते हैं।

संदर्भ-सूची :

1. कबीर - हजारीप्रसाद द्विवेदी
2. कबीर मीमांसा - रामचन्द्र तिवारी
3. मध्यकालीन काव्यसाधना - वासुदेव सिंह
4. कबीर: साहित्य, साधना और पंथ - वासुदेव सिंह
5. कबीरदास: विविध आयाम - सं० प्रभाकर श्रोत्रिय
6. कबीर-चिंतन - ब्रजभूषण शर्मा
7. आलोचना (अप्रैल-जून २०००) - सं० परमानंद श्रीवास्तव

हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय
गोवा-403206